ग्रामीण पाठकों के लिए

असूर्यलोक

भगवतीकुमार शर्मा

अनुवाद

ज्योत्स्ना मिलन

चित्र

जगदीपस्मार्त

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

शाम के डूबते सूरज सा धुंधला और उदास था उस समय नगर। कोई साठेक साल पहले नगर के छोटे, कच्चे घरों से स्त्रियों के चूल्हों और पंडितों के अग्निहोम का धुंआ चक्कर लेता हुआ उठता और आसमान में घुल जाता।

शहर की संकरी, उबड़खाबड़, भीड़ विहीन सड़क पर आँखों की जगह सिर्फ दो गड्ढे टिकाए जीते लोग भी बिना किसी सहारे के चल पाते थे। उस समय के ऐसे सेहतमंद आरामदेह शहर में आँखों के इलाज के लिए सबसे पहले डॉ. श्रीधर तांजोरकर का अस्पताल खुला था। कोहरे में डूबी उसकी तख़्ती को पढ़ पाना निगमशंकर भद्रशंकर त्रिवेदी जैसे पंडित के भी बस का नहीं था मगर ...।

कई सालों बाद भी निगमशंकर को वह पल अभी याद था। सोलह-सत्रह साल का निगम पाठशाला से संस्कृत पढ़कर लौट रहा थां। दोपहर का समय था। धूप की चिलकन के क्षण में अचानक ही निगम की आँखों के आगे अंधेरे का परदा-सा छा गया। उसे शरीर में बुखार और दर्द की लहर सी महसूस हुई। उस रात उसका शरीर चेचक के दानों से भर गया। चेचक के सर्प ने सबसे बुरे डंक आँखों में मारे। उसके दोनों दिए विराम पा गए।

भद्रशंकर को संताप हुआ। “मेरे पापों की सजा निगम को भुगतनी पड़ी।” निगम की माँ चंचल भद्रशंकर की तीसरी पत्नी थी। उसने बिलखते पति से सांत्वना के दो शब्द भी नहीं कहे। वह जानती थी कि पिता के किए पाप बेटे की आँखों में जा बोले थे। पिता-पुत्र के बीच नाता तो था साम्य नही था। वह सुलक्षण बेटे और कुलक्षण पति के बीच जी रही थी।

अंधेपन के दुःख से उबरने के बाद निगम ने फिर से पाठशाला जाना शुरू कर दिया। किसी एक सभा में साझेदारी करने काशी से आए पंडित विनोदानंद झा के मन में नेत्रहीन निगम की जिज्ञासा के प्रति दिलचस्पी जागी। आगे पढ़ने के लिए वे निगम को वाराणसी ले गये। बारह साल तक निगमशंकर ने वाराणसी की पाठशाला में भारतीय विधाओं का और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। वे कंठस्थ और हृदयस्थ विघाओं के स्वामी बन गए। अदर्शन की सीमाएं ज्ञानदर्शन से ही हटीं। अपने शहर में बड़ी पाठशाला स्थापित करने के ध्येय से उन्होंने पोथियों और पुस्तकों का विशाल संचयन किया।

काशी में रहते उन्हें पहले माँ की मृत्यु और फिर पिता की बीमारी के समाचार मिले। यहां का अध्ययन अब समाप्त हो गया था। उन्होंने काशी, पाठशाला, गंगा तथा बाबा विश्वनाथ को प्रणाम किया।

निगमशंकर अपने वतन लौटे तब भद्रशंकर के आखिरी दिन चल रहे थे। अंतहीन विलासिता के चलते उनकी काया कई रोगों से बिधं गई थी। उनकी दोनों आँखें मोतियाबिंद में चली गई थीं। उन्होंने कहा, “निगम, बेटे मैं तुम्हारा गुनाहगार हूं। तुम्हें अपनी नई मां को निभाना होगा।”

नई माँ ! निगमशंकर क्रोध और पीड़ा से बिलबिला उटे। स्त्री कंठ का सिसकना सुनाई दिया। शायद वे ही नई माँ थीं।

निगमशंकर बोले, "माँ प्रणाम"।

उसी रात भद्रशंकर ने देह त्याग दिया। नई माँ की चूड़ियां टूटीं, भाल की बिंदी पुंछ गई। इस सबका साक्षी होने के लिए खुद के पास आँखों का न होना निगमशंकर को अच्छा ही लगा। लेकिन हृदय में कई सवाल उठे। उनसे शायद पांचेक साल बड़ी नई माँ को वैधव्य क्यों ढोना चाहिए? वे क्यों सजा भुगतें? और फिर अब घर में होगी युवा विधवा और आँखों से अंधा लेकिन शरीर से युवा मैं। कैसे बीतेगा समय? एक दिन नई माँ ने उन्हें पास बुलाकर कहाः "निगमशंकर, सुना है कि तुम काशी जाकर बड़े पंडित हो गए हो?"

"मैं काशी के ज्ञानामृत से पोषित हुआ हूं माँ।"

"मुझको माँ न कहें, मैं उम्र में ... "

"महिमा उम्र की नहीं पद की है और आप मेरे मातृपद पर हैं।"

"यह नाता मेरे सिर जबरन लादा गया है। सच्चा नाता तो स्नेह का होता है और मुझे तो स्नेह चाहिए।"

निगमशंकर उठ कर चले गए।

अगली सुबह निगमशंकर वेदपाठ कर रहे थे। उन्होंने पैरों की आहट सुनी। कोई उनके पास बैठ गया था।

"मैं हूं निगम" नई माँ का स्वर पहचान में आया, "रहा नहीं गया इसलिए तुम्हारे पास चली आई !"

"माँ आप ये मंत्र सुनिये"

"मंत्र नहीं तुम्हारी मधुर वाणी"

"वेदमंत्रों से अधिक मधुर और क्या हो सकता है? जिस वाणी में हरि की महिमा गाई जा सकती है, वही सबसे मधुर है माँ।"

"मुझसे माँ न कहो निगम। कांटे चुभते हैं।"

"आप चंचल हो उठी हैं माँ, जाइए और हरिनाम लेते हुए सुख

से सो जाइए, अभी सुबह दूर है।"

"नींद मेरी दुश्मन है, चलो निगम, अपन शादी कर लेते हैं।"

"हमारा नाता माँ-बेटे का है, इस बात को पल भर के लिए भी कैसे भुलाया जा सकता है माँ?"

"मन का नाता सबसे बड़ा है निगम। निगम। मेरे निगम! मेरी प्यास ... और नई माँ का शरीर निगम की गोद में...।

निगमशंकर उठ खड़े हुए। बोले: मैं आज ही काशी चला जाऊंगा। अन्न-जल भी नहीं लूंगा...अगर आप इसी तरह ..."

नई माँ के आंसुओं का बांध टूट गया।

कई दिनों बाद नई माँ ने पूछा: "निगमशंकर तुम शादी क्यों नहीं कर लेते?"

"मैं अंधा हूं माँ। मेरे जैसे को बेटी देकर कौन से माता-पिता आँखें रहते हुए भी अंधे साबित होना चाहेंगे?"

"अंधेपन को छोड़कर तुममें कोई कमी नहीं है। अच्छे-अच्छों को चौंधिया देने वाली विद्या तुम्हारे पास है।"

"ये बात जाने दीजिए माँ।"

"मैं तुम्हें सुखी कर सकने की स्थिति में नहीं हूं, लेकिन मैं तुम्हें सुखी देखकर मरूंगी।" नई माँ ने कुछ सोचकर जोड़ा: "मेरी बहन की बेटी भागीरथी के साथ क्या तुम विवाह करोगे?"

और एक दिन भागीरथी ने निगमशंकर के जीवन तथा घर में प्रवेश किया। निगमशंकर ने कहा: "तुम मुझे आँखें देना मैं तुम्हें दृष्टि दूंगा। तुम मुझे एक पुत्र देना सूर्य जैसा तेजस्वी।"

दो-एक साल के बाद जन्में बेटे का नाम निगमशंकर ने रखा तिलक। फिर उन्होंने बच्चे को बगल में लिए सोई भागीरथी से एक ही सवाल पूछा: "रथी, बेटे की आँखें तो अच्छी-भली हैं न?"

तिलक को मुहल्ले में खेलना बहुत अच्छा लगता था। विशेष रूप से अंधेपन का खेल। आँख पर पट्टी बांधकर आसपास शोर मचाते

साथियों को आवाज़ के बूते पकड़ लेना। घर में बापूजी भी तो ऐसा ही कुछ करते थे।

छोटी सी बीमारी में नई माँ चली गईं। तिलक भागीरथी से अधिक नई माँ के पास रहता था। इसीलिए अचानक जब नई माँ की गोद छिन गई तब तिलक को पहली बार समझ में न आनेवाले किसी धुंधलेपन का अनुभव हुआ।

निगमशंकर का पुराना, संकरा, अंधेरा घर मुहल्ले के बीचोबीच था। निगमशंकर के विद्यार्थी बड़ी सुबह वेद पढ़ने के लिए आते थे। उनका पट्ट शिष्य दुर्गाशंकर अंध गुरू का बहुत सारा काम संभाल लेता था। वह कुछ-कुछ स्वजन जैसा ही था।
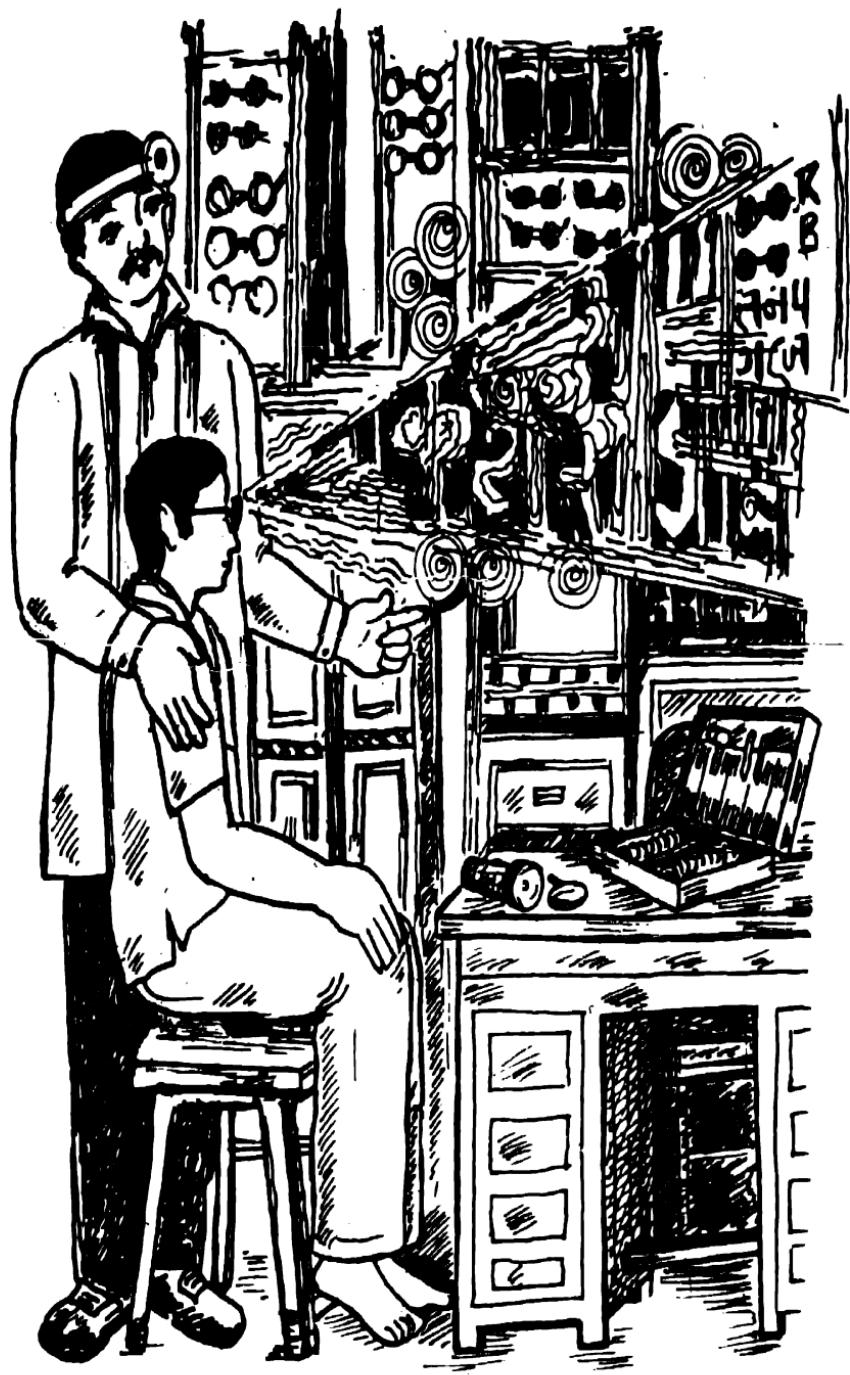
एक शाम तिलक अपने स्कूल से कुछ जल्दी ही घर लौट आया। उसकी आँखें आंसुओं से तर थीं।"मुझे अंग्रेजी नहीं पढ़नी है बापूजी।" वह जी खोलकर रो पड़ा।

घटना कुछ यों घटी थी। एक दिन स्कूल में तिलक को ब्लैक बोर्ड पर चाक से लिखे अक्षर पढ़ने में नहीं आए। उसकी स्थिति के समझ में आने पर मास्टर साहब ने कहा, त्रिवेदी तुम्हारी आँखें कमजोर हैं। तुम्हें चश्मा लगाना पड़ेगा वर्ना तुम कैसे पढ़ पाओगे?

तिलक रोता हुआ घर लौट आया। दूसरे दिन चिंतित निगमशंकर तिलक तथा दुर्गाशंकर को साथ लेकर आँख के डॉक्टर श्रीधर तांजोरकर के दवाखाने पर पहुंच गए। डॉक्टर ने तिलक की आँखों की जांच करके आँख का नंबर निकाल दिया।

"माइनस चार और साढ़े चार" फिर बोले "महाराज, इस लड़के को कल ही स्कूल से हटा लीजिए। इसकी आँखें बहुत कमजोर हैं। डॉक्टर ने तिलक से कहा "देखो लड़के आज से तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई एकदम बंद। किताबों को तुम छुओगे भी नहीं।"

तिलक को लगा जैसे उसके भीतर चिड़िया के ढेरों अंडे ऊपर

से गिर-गिरकर टूट रहे थे।

निगमशंकर ने डॉक्टर को बताया कि "मैं जब सोलह साल का था तो चेचक के प्रकोप में मेरी दोनों ही आँखें चली गई थीं। उसी के बाद मेरा असली विद्या जीवन शुरू हुआ था। साक्षात चेचक माता भी मेरे तिलक को पढ़ने से नहीं रोक पाएंगी।" दवाखाने से बाहर निकलकर उन्होंने तिलक से पूछाः

"बेटे तुम स्कूल तो जाओगे न? डॉक्टर की बात से तुम घबरा तो नहीं गए हो?

"नहीं बापूजी, मैं स्कूल जाऊंगा।"

घर जाकर निगमशंकर अपनी किताबों वाले कमरे में गए। उन्होंने एक पोथी को उठाकर अपनी दोनों आँखों से छुआया और कहाः "मां, मेरे बेटे के विद्या भाव को बुझने न देना।"

तिलक को चश्मा लग गया। घर में जितनी भी किताबें थीं उन सभी को उसने पढ़ना शुरू कर दिया। उसके मन में विचार आया कि घर के बाड़े में पारिजात के पेड़ की बगल में क्या किताबों का एक पेड़ नहीं उगाया जा सकता?

निगमशंकर के पड़ोस में शास्त्रीय संगीतकार पंडित रमानाथ रहने के लिए आए। उनके बेटे अभिजीत के प्रति तिलक बड़ा आकर्षित हुआ क्योंकि वह सितार बढ़िया बजाता था। उम्र में अभिजीत तिलक से कुछ बड़ा था लेकिन दोनों में दोस्ती होते देर नहीं लगी।

रमानाथजी की बेटी सत्या बडी शरारती और अल्हड़ थी। उसके पिता जब किसी राग की साधना में लगे होते तब वह बगल के कमरे से फिल्मी गीत गाना शुरू कर देती।

चश्मा लगने के बाद तिलक का खेलना कम हो गया था। कई सालों से उसने क्रिकेट की गेंद को छुआ तक नहीं था। मकरसंक्रांति के दिन पतंग उड़ाने के लिए वह छत पर भी नहीं जाता था। एक

बार वह सत्या के आग्रह के चलते गया था, लेकिन सत्या ने पतंग उड़ाने के बदले चरखी पकड़ने को कहा और वह छत से नीचे उतर आया। पीछे से सत्या ने ताना दिया। "सोडे की शीशी जैसा तो तुम्हारा चश्मा है....... तुम कैसे पेंच लड़ा पाते?

एक दिन तिलक ने अभिजीत से कहा: अभिभाई, मुझे सितार बजाना सिखाएंगे?"

सत्या पास ही बैठी थी। वह उसकी नकल उतारते हुए बोली: "तुम सितार सिखोगे? सोडे की शीशी के कांच जैसे चश्में से क्या तुम्हें सितार के तार दिखाई देंगे?"

तिलक सिर्फ मुस्कराया।

"तुम भले ही झूठमूठ हंसो, लेकिन तिलक, अभिभाई जब तुम्हें जयजयवंती सिखा रहें होंगे तब मैं तुम्हारे ऊपर ड्राऊं ड्राऊं करता मेंढ़क छोड़ दूंगी।

अब तिलक जोर से हंस पड़ा। उसे ये लड़की कहीं अच्छी तो नहीं लगती थी?

शहर में गोरधन सेठ के यहां बड़े भारी यज्ञ का आयोजन किया गया था। इसको करने की जिम्मेदारी निगमशंकर तथा उनके शिष्यों को सौंप दी गई थी। गोरधन सेठ के एक रिश्तेदार प्रोफेसर निकुंज मेहता अपने अमेरिकी मित्र रोबर्ट के साथ यज्ञ की विधि देखने के लिए आए थे। रोबर्ट को भारत की प्राचीन संस्कृति तथा विद्याओं में बड़ी दिलचस्पी थी। वे और निकुंजभाई निगमशंकर के ज्ञान से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनका ग्रंथागार देखने की इच्छा प्रकट की। एक शाम वे लोग निगमशंकर के पुराने घर गए। तिलक ने कमरा खोलकर उन्हें ग्रंथागार दिखाया। निगमशंकर बोले: "गोरेभाई, निकुंजभाई, मैं तो अकिंचन हूं लेकिन ये किताबें ही मेरी अकूत धन-संपदा हैं। इन किताबों और पोथियों को मैं अपनी आँखों से कभी देख नहीं पाया हूं, लेकिन मैंने इन्हें सूँघा

है, पीया है, कलेजे से लगाया है। इन किताबों ने मेरे अंधेपन को सहज बनाया है। मेरे गुरूजन सबसे पहले मेरी आँखें बने। फिर तो इन किताबों ने ही मेरी आँखों की जगह ले ली। मेरी स्मृति ही मेरी दृष्टि बन गई। मेरा तिलक क्या मेरी आँखें बन सकेगा? ईश्वर जाने।"

निकुंजभाई तथा रोबर्ट ने, निगमशंकर से सामवेद के मंत्र सुनाने का अनुरोध किया। प्रसन्न होकर निकुंजभाई ने पिता-पुत्र को दक्षिणा देनी चाही, मगर उन्होंने नहीं ली।

शैतान सत्या बार-बार तिलक की कमजोर आँखों का, मोटे कांचवाले उसके चश्मे का मज़ाक उड़ाती थी और तिलक को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। ऐसे ही मौके पर उसने, उससे कह दिया: "देखो सत्या, कमजोर हों तो कमजोर लेकिन ये मेरी आँखें हैं। इनके बारे में अब से मैं तुम्हारा या किसी और का कहा एक शब्द भी नहीं सुनूंगा। मेरी आँखें जैसी भी हैं मेरे काम आती हैं। इन्हीं से मैं लिखता-पढ़ता हूं। अभी तक इतनी पढ़ाई की है और आगे भी पढ़ूंगा। बहुत पढ़ूंगा। बी.ए. करूंगा एम.ए. करूंगा। अगर उससे भी अधिक पढ़ा जा सकता है तो पढ़ूंगा। एकदम अंधा हो जाऊंगा तो ब्रेल लिपि में पढ़ूंगा। किताबें की किताबें याद कर लूंगा।"

तिलक ने कहा: "तुम्हारी आँखें बहुत अच्छी हैं लेकिन तुम उनका क्या उपयोग करती हो? मैंने तुम्हें कभी कुछ खास पढ़ते-लिखते नहीं देखा है।" फिर तिलक ने धीमी आवाज़ में जोड़ा "इतना याद रखना सत्या, कि मैं अपनी आँखें बिल्कुल ही गंवा बैठूंगा तब भी तुमसे एक रूक्का तक पढ़वाने नहीं आऊंगा।"

तिलक के इन शब्दों ने सत्या को धीर-गंभीर बना दिया। उसने कहा।"मैं बहुत ही खराब लड़की हूं तिलक। नहीं क्या?"

"बिल्कुल भी नहीं, तुम सरल हो, कभी भी किसी बात को

गंभीरता से नहीं लेती।"

"लेकिन तुम्हारी इतनी अधिक गंभीरता से अकुलाकर मैं कुछ ज्यादा ही शैतानी कर बैठती हूं।"

"चलो तो फिर हम शैतानी और गंभीरता की थोड़ी-थोड़ी अदला-बदली कर लेते हैं।" तिलक ने हंसकर कहा।

सत्या ने गंभीरतापूर्वक कहा, "तिलक मेरी शैतानी को लेकर आज तुम मुझे टोक रहे हो लेकिन देखना ! मेरी सारी शैतानी देखते देखते गायब हो जाएगी और मैं इतनी गंभीर हो जाऊंगी कि तुम मुझे पहचान भी नहीं पाओगे।"

"और तब तुम मुझे इतनी अच्छी भी नहीं लगोगी, सत्या।"

"यानि? यानि कि तुम कहना चाहते हो कि मैं तुम्हें थोड़ी भी अच्छी लगती हूं?"

तिलक और सत्या के बीच का लगाव धीरे-धीरे बढ़ता गया।

मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद एक बार तिलक ने निगमशंकर के सम्मुख वेद सीखने की इच्छा व्यक्त की। निगमशंकर तो खुश हो गए। दूसरे दिन भोर में उन्होंने तिलक को वेद सिखाने की शुरूआत की। एक वेदमंत्र का अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा: "इस मंत्र में सोमदेवता की प्रार्थना है। कहते हैं: हे सोमदेवता, मुझे गांव, घोड़ा तथा कर्मवीर प्रजा दीजिए; धीर, मंडली तथा सभा के लिए एक बेटा दीजिए जो पिता की कीर्ति को बढ़ाये। इसी के साथ निगमशंकर ने मन ही मन प्रार्थना की: "हे सोमदेवता, आपने मुझे पुत्र दिया है तो उसे कर्मवीर तथा धीर, सभा एवं मंडली के योग्य बनाइएगा।"

शहर से लगी नदी में बड़ी जोरों की बाढ़ आई। उन दिनों तिलक कालेज के इन्टर आर्ट्स में पढ़ रहा था। बाढ़ के पानी का बहाव पहले कालेज की ओर था फिर शहर की ओर पलटने पर शहर की रक्षा करनेवाली दीवार में बड़े-बड़े गड्ढे हो गए। देखते

ही देखते पूरा शहर पानी से घिर गया। निगमशंकर और रमानाथजी के घर जिस मुहल्ले मे थे, वहां भी बाढ़ का पानी घुस आया। चारों ओर घबराहट फैल गई। रमानाथ, सत्या आदि उनके मकान की छत पर चढ़ गए। निगमशंकर के घर में छत नहीं थी, छप्पर था। अपने माता पिता को छप्पर पर पहुंचाने के लिए तिलक एक सीढ़ी ले आया।

घर में तो कमर तक पानी चढ़ आया था और बढ़ता ही जा रहा था। निगमशंकर ने तिलक से कहा: "ये पानी तो मेरा सर्वस्व लेने के लिए ही आया है। सीढ़ी से हो सकता है कि हम बच जाएं लेकिन मेरी अमूल्य किताबों और पोथियों को....।"

तिलक लालटेन लेकर किताबों वाले कमरे के पास गया। उसका हृदय जैसे थम सा गया, खिड़कियों, जालियों, दरारों से पानी ग्रंथभंडार में फैल चुका था।

बहत्तर घंटे बाद बाढ़ का पानी उतरा। घर में काफी नुकसान हुआ था। पुस्तकों वाला कमरा ही सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ था। अपनी जान की तरह जिन अमूल्य पुस्तकों और पोथियों का जतन किया था, वे बाढ़ के पानी में नष्ट हो गई थीं। यह देखकर तिलक का कलेजा मुंह को आ गया था। उसकी असली चिंता बापूजी को लेकर थी कि वे इस आघात को कैसे झेल पाएंगे?

निगमशंकर पहले तो सुन्न से हो गए लेकिन धीरे-धीरे उन्हें कुछ राहत मिली, उनके हृदय में शक्ति आई। वे बोले: "तिलक अब इस घर में दो ही ग्रंथ बचे हैं एक मैं और दूसरे तुम। अब मैं उतना अधिक व्यथित नहीं हूं। अंधड़ आकर मेरे भीतर से गुजर गया है। किताबें और पोथियां तो पानी में बह गई। लेकिन अभी भी मैं हूं और तुम भी हो। वरूण देव उसका एक कंगूरा भी झड़ा नहीं पाएंगे। हम दोनों मिल कर इस नष्ट हो चुके भंडार को पुनजीर्वित नहीं कर सकते क्या तिलक? "बोलते-बोलते वे बेहोश

होकर लुढ़क गए। थोड़ी देर बाद होश में आए और बोले: "अब मेरे शरीर का कोई भरोसा नहीं है भागीरथी आखिर तक तुम मेरी बगल में रहना और तिलक तुम भी।"

"ऐसा क्यों बोलते हैं? अभी तो आपको अपने बेटे तिलक को अपनी तरह विद्वान बनाना है।" भागीरथीबा ने कहा।

बाढ़ उतर गई। तिलक और सत्या बाढ़ से तबाह हो चुके शहर में घूमते घूमते नदी किनारे गए। तिलक के मन में नदी के प्रति तिरस्कार जागा लेकिन सत्या ने उसे समझाया: "नदी तो कभी भी कुछ भी नहीं लूटती, बल्कि कुछ न कुछ देती ही है।"

"अगर मैं ऋषि होता तो नदी को शाप देता" तिलक ने कहा।

"मां से इस तरह रूठना अच्छा नहीं है। वह फिर से सब कुछ भरा पूरा कर देगी। मैं स्त्री हूं, नदी को अधिक पहचानती हूं।" सत्या बोली, और फिर जोड़ा "इस नदी पर तुम्हें दया आनी चाहिए। वह तो स्वयं ही पराधीन हो गई है। वो हमेशा तुम्हारे बापूजी की विजय का गीत गाती रहेगी।"

तिलक घर लौटा तो निगमशंकर ने उससे पूछा: "क्या तुम नदी किनारे गए थे? क्या तुमने नदी को प्रणाम किया?" तिलक हिचकिचाया इसलिए वे बोले: "नदी को तो प्रणाम ही किया जा सकता है। बाढ़ गई बात भी गई। पुनश्च हरि ओम।"

उस रात तिलक ने निगमशंकर से उपनिषद् सीखना शुरू किया।

तिलक कालेज में बी. ए. में आ गया। गोरधन सेठ की बेटी ईक्षा पढ़ाई में उससे एक साल आगे थी। पढ़ने में तिलक की दिलचस्पी काफी बढ़ी थी। शहर के पुस्तकालय में वह नियमित रूप से जाता था। पुस्तकालय काफी जर्जर और अव्यवस्थित था। जतन के अभाव में वह खण्डहर होता जा रहा था।

इस बात से तिलक को बड़ा दु:ख होता था। पुस्तकालय को

व्यवस्थित और नया बनाना चाहिए यह विचार उसके मन में लगातार चलता रहता था।

पुस्तकालय को एक ट्रस्टी मंडल चलाता था। उस ट्रस्ट के अध्यक्ष थे गोरधन सेठ। एक दिन तिलक उनके घर गया। उसने उनसे अनुरोध किया कि वे पुस्तकालय में अधिक दिलचस्पी लें। उन्होंने स्वीकार करते हुए तिलक से कहा: "लेकिन, ये काम मेरे अकेले का नहीं है। ये काम विशेष रूप से तुम्हारा है तिलक, और ईक्षा का भी।"

तिलक ने कहा: "आज मैं आप दोनों को वचन देता हूं कि मैं डॉक्टरेट प्राप्त कर लूंगा तब भी काम तो शहर के इस पुस्तकालय में करूंगा। कोई दूसरी नौकरी नहीं स्वीकारूंगा।" फिर उसने जोड़ा, बापूजी की पुस्तकें औ़र पोथियां नदी की बाढ़ में नष्ट हो गए, उसके बाद से ही खण्डहर जैसे इस पुस्तकालय के प्रति मेरा ममत्व बढ़ता गया है। मैं इस में अपने पिता के ग्रंथभंडार की छवि को देख रहा हूं। इस पुस्तकालय के लिए अगर मैं थोड़ा बहुत भी कुछ कर पाऊंगा तो बापूजी की पुस्तकों के जाने का दुःख कुछ कम होगा।

गोरधन सेठ तथा ईक्षा ने उसे सहयोग देने का वचन दिया। तिलक और ईक्षा के बीच भाई-बहन का संबंध बना।

शहर से थोड़ी दूर नदी किनारे बसे सोमपुर गांव में बड़ा भारी यज्ञ आयोजित हुआ था। निगमशंकर को वहां जाना था। उनका शिष्य दुर्गाशंकर अब अहमदाबाद रहता था। तिलक बापूजी को सोमपुर छोड़ आया। वहां दुर्गा भी आ पहुंचा। उसने गुरूजी की देखभाल के काम को संभाल लिया। वह सुबह शाम निगमशंकर को नदी किनारे ले जाता था। वे वहां नहाते थे। गुरू-शिष्य के बीच ज्ञान की बातें होती थीं।

एक शाम गुरू-शिष्य नदी पर जाने को निकले। निगमशंकर को शौच जाना था। दुर्गा ने उन्हें झाड़ी की ओर भेज दिया। वहां निगमशंकर को सांप ने डंक मार दिया। उन्होंने आवाज़ दी। दुर्गा दौड़कर वहां पहुंच गया। गुरूजी को सांप ने काटा है, यह देखकर वह डर गया। अंधत्व के कारण निगमशंकर सांप को नहीं देख पाए और यह घटना घट गई। दुर्गा किसी तरह उन्हें उठाकर यज्ञमंडप तक ले गया। बहुत सारे लोग एकत्रित हो गए। मोटर में डालकर निगमशंकर को उनके घर ले गए। भागीरथी और तिलक को बड़ा दु:ख हुआ, गहन आघात लगा। रमानाथ, सत्या, गोरधन सेठ, ईक्षा सब आ पहुंचे। पूरे वातावरण में निकट आ रही मृत्यु की छाया बैठ गई। ईश्वर का नाम लेते और वेद मंत्र का उच्चारण करते हुए निगमशंकर की मृत्यु हुई। उस समय सूर्योदय हो रहा था, लेकिन तिलक को लगा जैसे सूरज डूब गया था। निगमशंकर ने जो अंतिम मंत्र बोला था उसमें कुबेर को सभा को उजालनेवाले पुत्र के लिए सोमदेव से प्रार्थना की थी।

गोरधन सेठ ने तिलक की नियुक्ति शहर के ग्रंथपाल के रूप में की। वेतन था महीने के 175 रुपए। तिलक ने निश्चय किया कि इसमें से 150 रुपए मां को खर्च के लिए देगा और बकाया 25 रुपए में से वह हर महीने काशी से पुस्तकें और पोथियां मंगवाएगा। इस तरह कोई पच्चीसेक साल में बापूजी का पुस्तक भंडार फिर से तैयार हो जाएगा।

ग्रंथपाल के रूप में तिलक ने पुराने, जर्ज़रित पुस्तकालय में नए प्राण फूंकना शुरू कर दिया।

घर के कामकाज में भागीरथीबा की सहायता करने के लिए घर में सत्या का आना जाना होने लगा था। ईक्षा भी आती थी।

रविवार की एक सुबह तिलक घर में बैठा मेघदूत पढ़ रहा था कि सत्या आ पहुंची। उसने भागीरथीबा से कहा: "बा, अब तिलक

के लिए बहू ले आइए।" और उसने यह भी जोड़ा: "हालांकि तिलक का विवाह तो हो चुका है "लायब्रेरी कुमारी" के साथ।

मगर सत्या एकाएक गंभीर हो उठी। भागीरथीवा मंदिर जाने के लिए निकल गई, उसके बाद भी उसका मौन टूटा नहीं। तिलक ने अचरज से पूछा– ''सत्या क्या हास्य के बाद मौन की बारी है?"

"नहीं आँसू की"। उदास होकर सत्या कहने लगी: "तिलक अब सब कुछ पूरा हो गया......मेरे दुर्भाग्य ने और तुम्हारी उदासीनता ने सब कुछ को चींथ डाला। एक बार अगर तुमने पापा से कहा होता तो शायद काफी कुछ हो सकता था।"

तिलक बोला: "सत्या, विधि के विधान को हम बदल नहीं सकते हैं। मैंने तो किसी प्रकार की कोई अस्पष्टता नहीं रखी थी।"

"तुम्हारी अस्पष्टता अगर नहीं थी, तो मेरी ओर से भी कहां थी? तुम्हारी उदासीनता क्या मेरे उत्साह को रद्द नहीं कर देती थी?"

तिलक के मन में विचार आया "मेरी उदासीनता अस्पष्ट अथवा अकारण नहीं है। सत्या को मैं अपने अंधकारमय भविष्य में सहयोगी होने से उबार लेना चाहता हूं। मुझे अगर उसे कुछ देना है तो सूर्य देना चाहिए। उसका अभाव मैं उसे क्यों दूं। सत्या के सान्निध्य में जीवन बिताने की मेरी चाहना है। मेरे अभावग्रस्त जीवन में उसका प्रवेश पूरा आकाश ले आएगा। लेकिन मुझे इतना स्वार्थी नहीं होना चाहिए। सत्या के आनेवाले कल के बारे में भी मुझे सोचना चाहिए।"

फिर तिलक ने सत्या से कहा: सत्या मैं, एक बड़ी शारीरिक कमी के साथ पैदा हुआ हूं। उस कमी ने हमेशा मेरी गति में अवरोध खड़ा किया है। मेरे मन पर भी उसकी एक बड़ी सी स्थायी छाया पड़ती रही है। मैं उससे मुक्ति पाने की कोशिश

करता रहा हूं - किताबें, अध्ययन, सितार, चित्र, कविता, कल्पना, बापूजी, बा, तुम- सभी उसके माध्यम रहे हैं। मैं किसी समृद्धि की खोज में हूं। लेकिन वो दुनियावी नहीं है। बापूजी का जीवन मेरे लिए दीप स्तंभ है। जब मैं अंधा हो जाऊंगा तब भी शायद इस दीप स्तंभ को देख पाऊंगा। मैं उजाले की खोज में हूं और वो मुझसे बाहर नहीं है यह भी जानता हूं।

फिर तिलक ने जोड़ाः "सत्या तुम दूसरी भागीरथीबा बन जाओ, ऐसा मैं बिल्कुल भी नहीं चाहता।"

"तिलक, दुनिया में भागीरथीबा एकाध ही नहीं होतीं। आज तो मेरे संजोग कुछ उलटे हैं लेकिन मेरी तैयारी कभी भी भागीरथीबा बनने की रहेगी। एक बाजी मैंने खो दी है, लेकिन इसका खेल अभी बाकी है और उसे मैं खेलने वाली हूं। फिर चाहे अपने जीवन की कीमत चुकाकर ही क्यों न खेलूं।"

सत्या ने तिलक को ब्योरे बताएः "उसकी शादी अजय के साथ तय हुई थी। अजय व्यापारी था। मुम्बई में रहता था। भविष्य में हो सकता है कि विदेश में बस जाए। शादी की तारीख एक महीने बाद पड़ रही थी। तिलक ने धीरे-से कहा "सत्या, मैं हमेशा तुम्हारे लिए शुभकामनाएं करता रहा हूं।"

सत्या ने कहाः "यह कोई हमारा अंतिम मिलन नहीं है, हमारा ऋणानुबंध अभी पूरा नहीं हुआ है, मैं उसे पूरा होने भी नहीं दूंगी। शायद ही ऋणानुबंध तो अब शुरू होगा।"

एक बार तिलक सत्या के घर गया। उसने सत्या से कहाः"तुमसे मैंने एक गुण सीखा है वो है हृदय की सच्चाई का। मैं उसे अपनाने की कोशिश करूंगा। और इस तरह तुम्हें पा लूंगा।"

"मैं तुम्हें कैसे पाऊंगी? पुस्तकों में तुम्हारी गहरी दिलचस्पी है, है न? तो तिलक मैं पढूंगी, बहुत पढूंगी और इस तरह तुम्हें पाती रहूंगी। बरसों बाद जब मैं तुमसे मिलूंगी तब मैं आज जैसी हूं,

वैसी नहीं रहूंगी। तब मैं दीमक बन गई होऊंगी।"

तिलक और सत्या ने एक दूसरे को चूमा।

एक रात तिलक ग्रंथालय में था तब उसे अचानक नुपूर की झंकार सुनाई दी। सत्या वहां आई थी। उसने चमकीले कपड़े और गहने पहने थे। बालों में मोगरे का गजरा लगा था और होंठ लाल चटक रहे थे वह बहुत ही सुन्दर लग रही थी। उसे आया देखकर तिलक को बड़ा अचरज हुआ। फिर तिलक ने उससे पूछाः "तुम? अभी? यहां?"

"हां, तुमसे मिलने की इच्छा को रोक नहीं पाई।"

"तुम्हें अगर इसी तरह देखता बैठा रहूं तो संभव है मेरी आँखों में दो नये सूरज उग आएं।"

"क्या मैं इतनी अच्छी लगती हूं?"

"हां सत्या, अजय को भी तुम अपने उत्तम क्षणों में ही मिलो।"

"मैंने अपना उत्तम समय तुम्हारे लिए रखा है, मैं तुम्हारे श्रेष्ठ पलों को पाना चाहती हूं।"

"मैं तुम्हारे जितना सुहाना नहीं हूं।"

"तुम्हारा प्रेम सुहाना है।"

"देर हो चुकी है सत्या, हर तरह से देर हो चुकी है।"

"एक पल कभी विलम्बित नहीं होता।"

"तुम्हारे मन में आज क्या है, सत्या?"

"तिलक, तुम्हारे खून में सदियों की विरासत बहती है, सदियों की? संस्कृति के कणों से तुम्हारा पिण्ड बना है, मैं यहां से बिल्कुल ही भिन्न दुनिया में जा रही हूं, वहां तुम नहीं होओगे, तुम्हारा यह पुस्तकालय भी नहीं होगा, मेरा अपना लगनेवाला घर भी नहीं होगा। भागीरथीबा की स्नेहमयी छाया भी नहीं होगी, तुम्हारे पिता का तप नहीं होगा, हमारी मिट्टी की सुगंध नहीं होगी वहां तो होगी आधुनिक, चमकीली मगर यांत्रिक और कृत्रिम

दुनिया ... रात-दिन और अधिक पैसा कमाने की बात होगी। टूटी नाव जैसी आँखों से विद्या के इस विशाल समुद्र को रौंदने के तुम्हारे विफल प्रयत्न भी वहां नहीं होंगे।"

"सत्या मैंने तुम्हें पहचानने में देर कर दी।"

"जिस दुनिया को छोड़कर मैं जा रही हूं, उस दुनिया को मैं अपने साथ ले जाना चाहती हूं-तुम्हारे माध्यम से, मैं कैक्टस के जंगल की ओर जा रही हूं लेकिन वहां पारिजात पनपाने का मेरा स्वप्न है, तुम मुझे पारिजात दोगे तिलक?"

"मैं तो अपने आप को दे सकता हूं।"

"मुझे बस इतना ही चाहिए।" कह कर सत्या ने तिलक को धीरे-धीरे अपने भीतर समो लिया। अलग होने से पहले सत्या ने कहा: "अब मैं अकेली कहां हूं, तुम मेरे साथ ही हो।"

तिलक की एम.ए. की परीक्षा का परिणाम घोषित हो गया। पहले वर्ष में उसने सफलता प्राप्त की थी। गुजराती विषय में उसे पूरी यूनिवर्सिटी में सबसे अधिक नम्बर मिले थे और इस विजय पर उसे स्वर्णचंद्रक मिल रहा था। परिणाम का पता चलने पर तिलक को सबसे पहले डॉ. श्रीधर तांजोरकर की याद आई, जिन्होंने तिलक को अपनी कमजोर आँखों के चलते अध्ययन छोड़ देने को कहा था।

तिलक की इस सफलता से ईक्षा तथा गोरधन सेठ को बहुत खुशी हुई। ईक्षा ने तिलक को शहर के कॉलेज में अध्यापक की नौकरी मिलने की संभावना का उल्लेख किया लेकिन तिलक ने तो ग्रंथपाल के काम को ही करने के अपने निश्चय को दोहराया। चाचा, ईक्षा बहन और लायब्रेरी ही मेरा कॉलेज और मेरी यूनिवर्सिटी है। पाठक ही मेरे विद्यार्थी हैं। मैं भी सदा का एक विद्यार्थी ही हूं और यह हजारों पुस्तकें मेरी गुरू हैं।

ईक्षा और गोरधन सेठ की तिलक के सामने एक न चली। सेठ

ने डॉ. सजल शाह नामक एक सेवाभावी युवा डॉक्टर के साथ ईक्षा की सगाई की संभावना के बारे में बताया।

अजय के साथ शादी करके मुम्बई पहुंची सत्या ने कुछ महीनों के इस अंतराल में तिलक को तीन पत्र लिखे। पहले पत्र के कुछ वाक्य कुछ इस प्रकार थे: "तिलु, हमारे शहर की नदी और यहां के समुद्र के बीच जितना फर्क है, उतना ही फर्क मेरे बीते हुए कल और आज के बीच है। हो सकता है आनेवाला कल और भी अलग साबित हो, मैं नदी छोड़कर समुद्र के निकट आई हूं लेकिन मैं उसमें समा जाना नहीं चाहती। समय आने पर मैं रेगिस्तान में विलुप्त हो जाना पसन्द करूंगी लेकिन समुद्र के खारेपन में मैं खोना नहीं चाहती।"

दूसरे पत्र में सत्या ने तिलक को बताया कि वह गर्भवती है। तीसरे पत्र में उसने बेटा होने की बात लिखी थी। सत्या ने अपने बेटे का नाम रखा था पर्जन्य। पत्र में सत्या ने पर्जन्य की भूरी, कहीं दूर दिगंत में ताकती आँखों का उल्लेख किया था। उसने यह भी लिखा कि अजय अमेरिका में बस जाने के लिए प्रयत्नशील है। तिलक ने एक भी पत्र का उत्तर नहीं दिया, सिर्फ उसकी मनोव्यथा बढ़ती रही।

एक दिन ईक्षा ने तिलक को अपनी डायरी पढ़ने को दी। उसमें उसने डॉ. सजल शाह से हुई अपनी मुलाकात के बारे में लिखा थां। पिछले पांचेक सालों से सजल उत्तर गुजरात के आदिवासी इलाके में स्थित एक पहाड़ी गांव में छोटा सा दवाखाना आदिवासियों की सेवा में चला रहा था और उसी में डूबा हुआ था। वह आधुनिक सुख-सुविधाओं से रहित जीवन जी रहा था। लेकिन उसे इससे तसल्ली थी। सजल ने उसे चेतावनी दी थी कि ईक्षा को उसका जीवन रास नहीं आएगा। ईक्षा ने तिलक की राय मांगी।

तिलक बोला: "तुम्हारी जगह मैं होता तो सजल को पसंद करता।"

ईक्षा और सजल की शादी हो गई। पूरा प्रसंग बड़ी सादगी से संपन्न हुआ। आदिवासियों में रतौंधी की बीमारी बड़े पैमाने पर फैली हुई है, यह जानकर गोरधन सेठ ने इस बीमारी को नेस्तनाबूद करने के इरादे से एक ट्रस्ट बनाने की तैयारी दिखाई। निगमशंकर की स्मृति में इस ट्रस्ट को "निगम नेत्र रोग निवारक ट्रस्ट" जैसा नाम देने का सुझाव रखा। यह जानकर तिलक ने ईक्षा से कहा: "बहन, तुम्हारे विवाह के अवसर पर चाचा ने तो मेरे लिए धन्यता का एक अवसर निर्मित कर दिया है।"

शादी के बाद तिलक ने सजल से कहा: "कभी मैं तुम्हारे मुल्क में आऊंगा। मैं तुम्हारा गांव और काम दोनों देखना चाहता हूं।"

भागीरथीबा इन दिनों काफी उदास और बेचैन रहा करती थी। उन्हें बार-बार निगमशंकर की याद आती थी। उनका मन बदले इसलिए तिलक ने उन्हें तीर्थयात्रा करवाने ले जाने का सुझाव दिया। भागीरथीबा ने अपने कुलदेवता विरक्तेश्वर महादेव के मंदिर जाने की इच्छा प्रकट की। एक दिन मां बेटा चल निकले। रेलगाड़ी, मोटर, बस और पैदल यात्रा करते हुए वे मंदिर पहुंचे। भागीरथीबा के मुंह से अचानक एक शब्द निकल गया: "कल को तुम शादी कर लोगे घर में बहू आएगी, तुम्हारे बेटे का मुंह देखकर मैं चैन से मरूंगी।"

असंभव, इस सबकी कोई संभावना नहीं है, तिलक क्रोधित हो उठा।

"तुम देखना अगर मैं जीवित रही तो तुम्हें और तुम्हारी बहू को यहां प्रणाम करने लाऊंगी।"

मां-बेटा शाम को नदी किनारे गए। भागीरथीबा ने वहां तिलक से विवाह की बात चलाई तो तिलक ने साफ-साफ कह दिया: "बा, तुम गलत उम्मीद मत पालो, मैं कभी भी शादी नहीं करूंगा।"

तुम्हारे घर में कभी कोई बहू नहीं आएगी। हमारा वंश मेरे साथ ही डूब जाएगा। अंधेरे का विस्तार आखिर किसलिए?"

भागीरथीबा की रूलाई फूट पड़ी। देर रात गये तिलक ने देखा कि भागीरथीबा मंदिर की धर्मशाला के अपने कमरे में बिस्तर पर नहीं थी। तिलक को डर लगा वह आसपास सब जगह देख आया। भागीरथीबा का कहीं अता पता नहीं मिला। वह घनघोर अंधेरे में ठोकरें खाता, कांटों-कंकरों की चुभन झेलता नदी किनारे दौड़ा। वहां उसने माँ को देखा। वे पानी में आगे-आगे बढ़ती जा रही थीं। गलाडूब पानी तक भागीरथीबा पहुंच गई थीं। तिलक ने मां के इरादे को भांप लिया। उसने उन्हें बचा लिया। बहुत देर रोने के बाद मां ने कहाः "तिलक तुमने मुझे मरने क्यों नहीं दिया? शाम को आज तुमने मुझसे जो बोल कहे उसके बाद मेरे लिये जीने लायक बचा ही क्या है? एक तुम्हारे आसरे पर जी रही हूं, तुमने धोखा देने जैसा काम किया।"

"इतना अधिक गुस्सा और वो भी अपने बेटे पर?"

"यह गुस्सा नहीं है, भैया दुःख है।"

"मैं शादी न करूं, घर में बहू न आए, वंश आगे न बढ़े, ये क्या इतना बड़ा दुःख है कि तुम उसके लिए अपनी जान दे दो?"

"अपने बापूजी की विरासत तुमने अपने में तो उतारी ... लेकिन क्या यह अमरबेल यहीं रूक जाएगी?" फिर उन्होंने पूछा "सत्या क्या बुरी थी?" तिलक का कलेजा मुंह को आ गया। वह झनझना उठा।

"तुमने अगर सत्या के साथ शादी की होती तो आज हमारे आंगन में अच्छा-भला बेटा खेल रहा होता। बड़ा होकर वह तुमसे भी सवाया ... ."

बा के इन शब्दों ने तिलक के रोम-रोम में आग लगा दी।

भागीरथीबा ने अंतिम बार चोट कीः "सत्या को तुमने क्यों

धकेल दिया? तुम मनुष्य हो कि नहीं?"

तिलक ने अब बा को सारी बात बता देने का निश्चय किया वह बोला: "सत्या की मेरे साथ शादी करने की बहुत इच्छा थी लेकिन उसे नकारने की एक ही वजह थी: कि सत्या-सत्या ही रहे वह दूसरी भागीरथीबा न बने, यह मेरी दिली इच्छा थी। तुम्हारी तरह सत्या को भी भविष्य में एक अंधे आदमी को न ढोना पड़े यही मेरी चाहना थी।"

फिर तिलक ने अपनी जाँघ का घाव खोलते हुए अपनी माँ से कहा: "सत्या की शादी दूसरे दिन होने वाली थी, रात को मैं पुस्तकालय में था तो सत्या बिजली की तरह वहां आ पहुंची। उसने खुद होकर अपने आपको मुझे सौंप दिया। नहीं बा, सत्या को हल्की स्त्री मान लेने की भूल न करना। अमरबेल की विरासत के लिए उसके मन में बेहद सम्मान था इसलिए उसने अपने आपको" फिर उसने जोड़ा: "और बा, सत्या की गोद में आज पर्जन्य है।"

"बेटे, अब मैं मरना नहीं चाहती," भागीरथीबा बोल उठीं। तिलक के उत्साह और गोरधन सेठ की व्यावहारिक बुद्धि के चलते आखिरकार पुस्तकालय का आधुनिक विशाल भवन बनकर खड़ा हो गया। तिलक ने थोड़े-थोड़े करके विभिन्न पुस्तकों और पोथियों को एकत्रित किया था उन्हें भी उसने नये पुस्तकालय को दे दिया। उन पुस्तकों और पोथियों को समेटे अल्मारियों को एक कमरे में जमाते हुए गोरधन सेठ ने कहा: इसका नाम रखेंगे "निगम प्राच्य विद्या विभाग", इस प्रकार निगमशंकर का बाढ़ में नष्ट हो चुका पुस्तक भंडार कुछ अंशों में नया जीवन पा सका।

नये पुस्तकालय का उद्घाटन प्रसंग प्रसिद्ध कवि और चिंतक कृष्ण द्वैपायन के हाथों सुशोभित हुआ। तिलक और गोरधन सेठ ने इसके लिए उन्हें निमंत्रण भेजा था और उन्होंने उसको स्वीकार

कर लिया था। उनका आना तिलक के जीवन की एक धन्य घड़ी थी। बात में से बात निकलने पर तिलक ने अपनी कमजोर आँखों के संदर्भ में कृष्णजी से कहा: "जब मेरी रात होगी तब मैं धृतराष्ट्र नहीं बनूंगा, सूरदास बनने की कोशिश करूंगा।"

पुस्तकालय के उद्घाटन के बाद कृष्णजी वहां दो-तीन दिन रूके। चालीस से भी अधिक साल पहले यानी बीसेक साल की उम्र में देश के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी का संदेश लोगों तक पहुंचाने के लिये वे इस प्रदेश में आए थे। उन्हें फिर से वहां जाने की इच्छा हो आई। इसके लिये उन्होंने मोटरगाड़ी नहीं बल्कि नाव को पसंद किया। नदी के प्रवास में कृष्णजी के साथ तिलक व ईक्षा भी शामिल हुए।

यात्रा के दौरान कृष्णजी स्वतंत्रता संग्राम की स्मृतियों में गोता लगाते रहे।

"कृष्णजी, आप तो कई बार बापू से मिले होंगे" ईक्षा ने पूछा।

"यह तो सौभाग्य था मेरा-हमारा।" कृष्णजी की आँखों में चमक दिखाई दी।

"उनके बारे में किसी एक बात या घटना या अनुभव को आप प्रस्तुत करना चाहें तो वो क्या......" तिलक ने ईक्षा के प्रश्न को पूरा किया।

कृष्णजी ने कहा: "वह गांधीजी का मौन-दिवस था यानी सोमवार। मैं उनसे मिलने गया, प्रणाम करके बैठा। उन्होंने पट्टी पर लिखा: "सिर्फ कालीदास न होना, व्यास या वाल्मीकि होना" बस और हमारी मुलाकात पूरी हुई। पट्टी पर का लिखा मिट गया लेकिन मेरे हृदय में वह एक शिलालेख बन गया।

कृष्ण द्वैपायन देश की वर्तमान दशा से बहुत व्यथित थे, उन्होंने तिलक से कहा: "जीवन की पहली दौड़ में हमें समर्थ ठोस आधार मिला था, जो छोड़ने से भी नहीं छूट सकता था।"

"हजारों लाखों लोगों ने उसे छोड़ दिया, कृष्णजी!"

"और कुछ थोड़ों ने उस आधार को जी जान से बनाए रखा है उज्ज्वल किया है कृष्ण जैसे कृष्ण को भी उनके ही कुल के यादवों ने कुछ नहीं गांठा, फिर गांधी की क्या बिसात? यादव कुल कभी निर्वंश नहीं जाता भाई।"

नाव को किनारे लगाया। पास ही छोटा सा गांव कृष्णजी का जाना-पहचाना निकला। कई साल पहले वे स्वराज की लड़ाई से संबंधित पत्रिकाओं को बांटने और गांधी-गीत गाने इस तरफ आए थे। गांव के चौरे पर छाए वटवृक्ष की ऊंची डगाल पर चढ़कर उन्होंने तिरंगा झंडा फहराया था कि तभी पुलिस दौड़ आई थी। पुलिस ने झंडा उतारकर चींथ डाला था और झंडा लहरानेवाले पर लाठियां बरसाई थीं। सिर से लहू की धार फूट निकली थी लेकिन होंठों पर एक ही नाद थाः "वन्दे मातरम्"

रात हुई, नाव चली जा रही थी। तिलक की आँख में नींद कहीं भी नहीं थी। कृष्णजी अस्वस्थ थे, गर्भवती ईक्षा को दूर पहाड़ी इलाके में बसकर कठिन जीवन बिताते सजल की बहुत याद आ रही थी। एकाएक वह कृष्णजी द्वारा रचित गीत गा उठीः

"मुझे चैत की चांदनी बुलाती है,
आषाढ़ मेरा आंसू से गीला रे"

कृष्णजी उसके पास आए। उत्तर गुजरात के जिस आदिवासी इलाके में सजल डॉक्टरी सेवा तथा अन्य सामाजिक कार्य कर रहा था उसी इलाके में कृष्णजी का बचपन बीता था इसलिए उन्होंने ईक्षा से कहाः "ईक्षा, क्या आज तुम सजल की, अपनी, गांव की लोगों की, पहाड़ों की, वहां के आकाश की, वृक्षों की, झोंपड़ियों की बात करती रहोगी? मैं अपने बचपन में जाना चाहता हूं।"

और ईक्षा बह चली। वह लगातार बातें करती चली गई पहाड़, नदी, गांव, रासबिहारी का मंदिर, झोंपड़े, मिट्टी के घर, आदिवासी

लोगों के काले झुर्रियों भरे चेहरे, आरंभ में समझ में न आनेवाली बोली, सर्पों की जातियां, मक्का, होली के रंग तथा ढोलक, महुए, अनजाने देवी-देवता, वहम्, ओझाओं की चीख-पुकार, हत्याएं, मरीजों को देखकर सजल की आँखों में उमड़ती करूणा, एक गगरा पानी लेने के लिए मीलों तक जाती-आती आदिवासी स्त्रियां, ठेकेदारी के जुल्म, कटते पेड़ों की कथा.......

तिलक सत्या की याद से घिर गया था। उसने कृष्णजी से कहा, मुझे तीनों काल विशुद्ध अंधकारमय लगते हैं कृष्णजी, गर्भ का अंधकार, संशयों का अंधकार और मृत्यु का अंधकार।"

"क्या तुमने कोई असह्य घाव झेला है?"

"अभी भी झेल रहा हूं और झेलूंगा आखिर तक, लेकिन जूझता रहूंगा टूटूंगा नहीं।"

"इसी में मनुष्य के नाते हमारी कसौटी है। घाव में से गुलाब उगाएं तभी हम मनुष्य हैं। बिना छेदे क्या बांसुरी बजती है?"

"आपकी बातों से समाधान तो मिलता है, श्रद्धा नहीं बैठती।"

"हमारी पीढ़ी के बारे में सोचो तिलक, कैसा महान सारथी हमें मिला था। हमने खुद ही उसे खो दिया, कैसे भव्य सपने हमने देखे थे। एक के बाद एक वे सब टूटते चले गए। एक व्यक्ति की वेदना की तुलना में पूरी एक पीढ़ी की वेदना क्या कम वजनी होगी? भाई व्यक्ति के विषाद को विश्व के विषाद में गलाना ही होगा।" कृष्णजी ने बात पूरी करते हुए कहा।

दूसरे दिन सुबह नाव शहर की नदी के किनारे पहुंची तो समाचार मिला कि भागीरथीबा पर हृदय की बीमारी ने हमला किया है और वे अस्पताल में भर्ती हैं सब तत्काल अस्पताल की ओर दौड़ पड़े। भागीरथीबा तिलक के ही नाम का जाप कर रही थीं। आधे-अधूरे होश की स्थिति में झूलतीं माँ निगमशंकर को भी याद कर रही थीं। फिर अचानक उनके मुंह पर सत्या और पर्जन्य

के नाम आए। तिलक चौंक उठा। हरि नाम का स्मरण करते हुए माँ ने देह-त्याग दिया। तिलक गहरी वेदना में डूब गया। कृष्णजी ने उसे सांत्वना देते हुए कहा: "जो जगत् माता है उसकी मृत्यु नहीं होती, तिलक उसके जाने का कोई शोक भी नहीं होता।"

मृत-देह को अस्पताल से घर लाया गया। रात को कृष्णजी फिर तिलक से मिलने आए उन्होंने कहा: "स्त्री वास्तव में माँ होती है जो प्यार बरसाती है वो माँ है और स्त्री के पास प्यार का अक्षय-पात्र है। माताएं सब एक सी होती हैं। सब माताएं मिलकर ही जगत्-माता बनती है।" नदी किनारे माँ का अग्नि-संस्कार किया गया। उसके बाद तिलक से कृष्णजी ने कहा: "ऋग्वेद में माँ के बारे में एक प्रार्थना है उसमें माँ को संबोधित करके कहा गया है: "तुम्हारी सुरक्षा पाकर एक पेड़ के नीचे आने की तरह हम तुम्हारे पास आते हैं।"

"मेरे लिए तो अब ये समूची भूमि वृक्षरहित हो गई है।"

"नहीं तिलक, माँ यानी श्रद्धा, वो हमारे पास होती है, हमारे पास आती रहती है। अकल्पित रूपों में भी वो हमारे पास आती है, आएगी, आएगी ही।"

"माँ अब किस रूप में मेरे पास आएगी। अब मुझे कौन सा वृक्ष मिलेगा?"

"यह कोई नहीं जानता। बीज अगर बोया गया होगा तो पेड़ उगेगा ही। पेड़, पेड़ है लेकिन उनकी जड़ों को पैर मिले हैं। इसीलिए तो पेड़ की छाया फैलती है, फैलेगी तुम तक। जड़ और छाया के रूप में पेड़ तुम्हें मिलेगा तुम धीरज रखो स्वस्थ रहो, माँ आएगी-पेड़ के रूप में।"

शहर छोड़ने से पहले कृष्णजी एक बार फिर तिलक से मिलने आए। जाते-जाते उन्होंने उससे कहा:

"माँ का वृक्षत्व और वृक्ष का मातृत्व - इस बात को तुम कभी

मत भूलना। वृक्ष अगर तुम्हारे पास आए तो तुम उसे अपना लेना। दुनियादारी के विधि-निषेधों की ओर ध्यान न देना। वृक्ष यानी प्रेम और प्रेम को किसी भी रूप में थामने का अधिकार है।"

पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए तिलक ने अपने महानिबन्ध का काम शुरू किया। उसका विषय था: "गुजराती साहित्य पर आदिवासियों का प्रभाव"। तिलक ने अपनी आँखों से ढेर सारा काम लेना शुरू कर दिया। एक दिन वह अपने महानिबंध के लेखन का काम करने बैठा तो उसे अपनी आँखों के आगे काले बिंदु और तंतु दिखाई देने लगे। आँखों के अधिक खराब होने का डर उसे लगा।

उसका सहायक हेमंत उसे डाक्टर आलोक सरदेसाई के पास ले गया। युवा नेत्र चिकित्सक ने समभाव और आदर से साथ उनकी आँखों की जाँच करते हुए कहा: "आपकी आँखों को तत्काल तो कोई जोखिम नहीं है लेकिन आपकी आँखें शुरू से ही कमजोर हैं इसलिए सावधानी बरतनी पड़ेगी। अब आप पढ़ना-लिखना बंद कर दीजिए।"

"लेकिन डॉक्टर मेरे अध्ययन का क्या?" तिलक ने सवाल पूछा। उस रात अपने घर खाना खाने का निमंत्रण आलोक ने तिलक को दिया। आलोक की पत्नी माधुरी ने स्नेह से उनका स्वागत किया। डॉक्टर दम्पति के पुत्र पार्थ को देखकर तिलक को पर्जन्य की याद आई। माधवी बढ़िया सितार बजाती थी। और आलोक तबले में दक्ष था। खाना खाने के बाद दोनों ने संगीत प्रस्तुत किया। तिलक को अभिजीत की सितार और सत्या की शरारतें याद आई। आलोक और माधवी ने तिलक को अपना बंगला दिखाया। दीवार पर एक तैल चित्र लगा था। आलोक ने कहा: "ये मेरे नानाजी हैं, ये बरसों पहले इसी शहर में आँखों के डॉक्टर थे।"

"उनका नाम क्या श्रीधर तांजोरकर था?"

"हां, क्या आप उन्हें पहचानते थे? आलोक ने अचरज से कहा। तिलक ने कोई उत्तर नहीं दिया। बचपन में इसी डॉक्टर ने उसे उसकी आँखों की जांच करके स्कूल छोड़ देने की सख़्त चेतावनी दी थी। तिलक को लगा जैसे उसकी नसों में अंधेरे के घोड़ों की बड़ी-भारी फ़ौज दौड़ी चली आ रही थी।

आदिवासियों के जीवन का प्रत्यक्ष परिचय पाने के लिए तिलक ने सजल और ईक्षा जहां रहते थे, उस पहाड़ी गांव में जाना तय किया। वो वहां पहुंचा। सजल से उसने बार-बार वहां के आदिवासियों के जीवन-संघर्ष, गरीबी, भूख, बीमारी, वहम, शोषण, आदि की जानकारी प्राप्त करना शुरू कर दिया और उसी के साथ-साथ तिलक ने अपने महानिबंध का काम भी शुरू किया। यहां रूकने के दौरान तिलक को ईक्षा की बेचैनी का आभास हुआ। उसने पूछा इसलिए ईक्षा ने हृदय खोला, आदिवासी लोगों की डॉक्टरी सेवा करते-करते सजल यहां का सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी हो गया था। उसने आदिवासियों को संगठित किया था। यह सब शोषण खोर राजनीतिज्ञों को सालता रहता था। चकुभाई उनमें सिरमौर थे। उनके साथ सजल का संघर्ष चल रहा था। चकुभाई और उनके साथी सजल को साम-दाम-दंड-भेद से नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे। सजल और ईक्षा के बेटे करा अपहरण कराने की एक असफल कोशिश उन्होंने कर देखी थी। इस सबके बावजूद सजल गरीबों की सेवा और शोषण मुक्ति के लिए अडिग रहा था। ईक्षा को अमंगल की ध्वनियां सुनाई दे रही थीं, तिलक ने उसे धीरज बंधाया।

तिलक की आँखों की तकलीफ बढ़ती गई। एक रात महानिबंध को लिखते समय उसकी बांई आँख में दर्द की चुभन बढ़ गई। एक पल के लिए उसकी दाई आँख के सामने अंधेरा छा गया - यानी

आधा सूरज तो अब डूब गया। गहरी वेदना के साथ तिलक के मन में विचार आया आधा असूर्यलोक उसके लिए साकार हुआ। अब केवल आधा अंश बचा है। आधी अधूरी प्रतिध्वनि। लेकिन उसने तय किया कि सजल और ईक्षा को इस घटना के बारे में कुछ न बताया जाए और अपना लेखन कार्य जारी रखा जाये। जीवन के युद्ध में तो अंतिम सांस तक लड़ना ही पड़ता है। ध्वंस संभव है, पराजय या शरणागति नहीं, उसने निश्चय किया।

गांव के निकट रासबिहारी मंदिर की पांचसौवीं जयंती का उत्सव था। उसमें मुख्य अतिथि के रूप में कृष्ण द्वैपायन आए। तिलक, सजल और ईक्षा उनके साथ मंदिर के उत्सव में शामिल हुए। राधा-कृष्ण का मंदिर पहाड़ों की गोद में बसा हुआ था। उत्सव शुरू होने से पहले सब नदी किनारे गये। तिलक की दाई आँख में भी अब चुभन होने लगी थी। व्यग्र तिलक ने कृष्णजी से पूछा:"क्या संघर्ष ही इस दुनिया का नियम है?"

"हां भाई, पृथ्वी शापित है, हम मनुष्यों ने उसे शापित बनाया है। उसे संघर्ष का श्राप मिला है और संघर्ष सत्य और असत्य के बीच में है।"

तब फिर ऐसी पृथ्वी को बने क्यों रहना चाहिए?" ईक्षा ने आक्रोश से पूछा।

"तुम्हारे गुस्से को मैं अयोग्य नहीं कहूंगा। महाभारत ही इस दुनिया का सत्य है। कौरव मारे गए, लेकिन कौरवपन अजर-अमर है। आश्वासन इतना ही है कि आदमी ने बुराई के खिलाफ युद्ध को छोड़ा नहीं है।"

"इस संघर्ष में पृथ्वी यानी कि स्त्री, माँ, द्रोपदी, सीता सबसे अधिक सहन करती हैं।" ईक्षा बोल उठी: "मुझे तो किसी अनिष्ट की आहट सुनाई दे रही है और परिणामस्वरूप सबसे अधिक वेदना मेरे हिस्से आनेवाली है। मैं तो उसे सह लूंगी, सीता और

द्रोपदी दोनों मुझमें हैं।"

फिर तिलक ने कृष्णजी से पूछा: "इस विश्व का अंतिम सत्य क्या है? उजाला कि अंधेरा?"

कृष्णजी ने राजा जनक एवं याज्ञवल्क्य ऋषि के संवाद को याद करते हुए कहा: "जब सूरज डूब जाता है तो आदमी चंद्र के उजाले के सहारे चलता है, चंद्र भी जब डूब जाता है तो आदमी के लिए अग्नि भी ज्योतिस्वरूप बन जाती है। वह भी नहीं होती तो आदमी आवाज़ के सहारे आगे बढ़ता है और जब वाणी भी नहीं बचती तो फिर आत्मा स्वयं ज्योतिरूप होती है। इस जगत का अंतिम सत्य उजाला है, क्योंकि परमात्मा प्रकाशरूप है और विश्व का मध्यबिन्दु परमात्मा हैं।"

मंदिर का उत्सव शुरू हुआ, ढोलक, बांसुरी, मजीरे बजाते हजारों आदिवासी उसमें शामिल हुए। चारों ओर गुलाल उड़ रहा था। मूर्तियों की आरती उतारने की रस्म शुरू हुई। झिलमिलाते उजाले के बीच तिलक की आँखों की चुभन बढ़ती जा रही थी। मानो लावा की लपट में झुलस गई थी उसकी दांई आँख में भी संपूर्ण अंधकार छा गया था। तिलक का मन पुकार उठा: "कहां हो कृष्णजी, तुम कहां हो? रासबिहारी तुम कहां हो? तुम्हारे मोरपंख की रंगआभा मुझसे अदृश्य क्यों है?"

मंदिर की भीड़ में तिलक अकेला पड़ गया, लेकिन फिर ईक्षा मिल गई। तिलक कुछ देख नहीं पा रहा है, इसका पता ईक्षा को चल गया। वो हिल उठी। फिर सब एकत्रित हो गए। गांव में कोई सुविधा नहीं थी इसलिए दूसरे दिन सुबह उसे शहर ले जाने का निर्णय लिया गया। ट्रेन में उसके साथ ईक्षा तथा कृष्णजी गए। शहर पहुंचने के बाद सारे लोग सीधे डॉ. आलोक सरदेसाई के अस्पताल पहुंचे। उन्हें सब बताया, डॉक्टर ने सावधानीपूर्वक तिलक की आँखों की जांच करने के बाद बताया:"तिलक भाई, आपकी

दोनों आँखों के परदे यानी कि नेत्र पटल खिसक गए हैं।"

सबको बड़ा आघात लगा। अभी तक तो तिलक स्वयं को प्राप्त और विकसित हुए ज्ञान के बूते स्वस्थ रहने का प्रयास करता रहा है।

कृष्णजी चले गए। ईक्षा कुछ और दिन वहां रूकी। अस्पताल में वह तिलक को किताबें पढ़कर सुनाती थीं। फिर वह भी अपने गांव चली गई। तिलक अकेला हो गया। आलोक और माधवी उसका पूरा जतन करते थे फिर भी तिलक की आँखों की स्थिति में किसी किस्म का सुधार न आने पर आलोक ने तिलक को अधिक ईलाज के लिए मुम्बई के डॉ. विनायक गोरे के अस्पताल में ले जाने का निश्चय किया। मुम्बई का नाम आते ही तिलक को सत्या और पर्जन्य की याद आई।

डॉ. गोरे ने तिलक की आँखों की शल्य क्रिया की लेकिन अपेक्षित परिणाम नहीं आया। तिलक की गई हुई दृष्टि नहीं लौटी। आखिरकार अस्पताल से छुट्टी पाकर तिलक आलोक के साथ लिफ्ट की ओर जा रहा था कि उसने एक आवाज़ सुनी:

"तुम, ... तुम तिलक हो?" और उसी के साथ उसकी ओर तेजी से बढ़ते कदमों की आवाज़ फिर से वही प्रश्न और निकट से और हुलास से।

"तुम, ... तुम तिलक ही हो ना।''

तिलक का नखशिख आंदोलित हो उठा उसने पूछा: "हां, मैं तिलक लेकिन ... तुम ... तुम कौन?"

"मुझे नहीं पहचाना?'' जवाब में फिर प्रश्न आया।

मेरी आँखें - मैं किसी को देख नहीं पाता हूं।"

"मैं सत्या हूं ... तुम मुझे तो देख ही पाओगे तिलक" और बाकी शब्द आँसुओं के गीलेपन में डूब गए। फिर बड़ी मुश्किल से आवाज़ निकली - पर्जन्य ... बेटे ... जल्दी यहां आओ ...

देखो ये कौन हैं?"

तिलक के मन में बिजली की तेजी से प्रश्न कौंधाः "यह सपना है कि सत्य है?"

वह सत्य था।

आलोक की अनुमति से सत्या तिलक को अपने मुलुण्ड स्थित फ्लैट में ले गई। दशकों बाद दोनों मिल रहे थे। दोनों ने एक दूसरे को अपनी-अपनी आपबीती सुनाई। सत्या ने अजय के साथ विवाह किया लेकिन दोनों के बीच बड़े मतभेद थे। अजय के कई तरह के अत्याचारों को सत्या चुपचाप सहती रही। अजय ने अमेरिका में बसने का निश्चय किया। सत्या ने उसका साथ देने से इंकार किया। सत्या के मन में अपराधबोध था। उसने अजय से काफी कुछ छुपाया था। आखिरकार उसने जो कुछ सच था वह सब बता दियाः "अजय, पर्जन्य तुम्हारा बेटा नहीं है।"

अजय को बहुत गुस्सा आया उसने सत्या को मारा-पीटा। सत्या शांत और अडिग रही। फिर एक दिन अजय ने सत्या से तलाक के कागजों पर दस्तख़त करवा लिए और विदेश चला गया। सत्या निराधार हो गई। फिर वह कलकत्ता अपने पिता रमानाथ और भाई अभिजीत के पास चली गई। उन्होंने उसका सत्कार किया। सत्या ने अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी की। उसे बैंक में नौकरी मिल गई। अभिजीत ने शादी की, उसकी पत्नी ने सत्या एवं पर्जन्य के साथ बुरा बर्ताव करना शुरू कर दिया। स्वाभिमानी सत्या किराए के मकान में रहने चली गई। पर्जन्य को स्कूल में दाखिला दिलाया तो वहां उसने पिता के रूप में तिलक का नाम लिखवाया और यही सच्चाई भी थी। कुछेक साल बाद उसका तबादला मुम्बई हो गया तबसे वो इस फ्लैट में पर्जन्य के साथ रह रही थी। कई साल पहले उसने तिलक को जो वचन दिया था उसी के मुताबिक लगातार पुस्तकें पढ़ती रही थी।

सत्या ने तिलक को अपने जीवन की ये कथां सुनाई। तिलक इसे सुनकर भाव-विभोर हो उठा। अब वो पर्जन्य से मिलने के लिए उत्सुक था। सत्या ने उसे पर्जन्य के बारे में बताया: "पर्जन्य, इस समय बी. ए. के आखिरी साल में पढ़ रहा है। दर्शन एवं संस्कृत विषयों में वह बड़ा तेजस्वी है। वेदान्त विषयों में भी वह पूरे कॉलेज में बेजोड़ है। तिलक को अपने पिताजी के शब्द याद आए: "हे सोमदेवता। हमें कर्मवीर, धीर, मंडली एवं सभा के लिए सक्षम पुत्र प्रदान करो।"

सत्या ने तिलक से कहा: "मैने पर्जन्य से तुम्हारे बारे में, अपने बारे में धीरे-धीरे सबकुछ बताया है। उसके मन में तुम्हारे प्रति गहरा सम्मान है। वह कभी किसी ग्रंथी से पीड़ित नहीं रहा। पिता से संबंधित समस्या से परेशान नहीं हुआ। दुनिया के सामने वह सीना खोलकर खड़ा रहा है। कई बार तो उसने मेरा दुखछीन लिया है।"

तिलक पर्जन्य से मिलने को आतुर हो उठा। हालांकि वह अपने पुत्र को अब कुछ देख पाने की स्थिति में नहीं था। निगमशंकर भी तिलक को देख नहीं पाए थे। पर्जन्य ट्यूशन क्लास से लौटा। सत्या ने कहा: "आओ पर्जन्य, तुम्हारे पापा कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" तिलक के चरणों ने युवा हाथों का स्पर्श महसूस किया उसकी गोद में एक सिर टिका और उसने एक संबोधन सुना: "पापाजी"

"पर्जन्य ... ! मेरे बेटे ... !" कहकर तिलक ने पर्जन्य के शरीर को, उसके चेहरे को अपने हाथ से स्पर्श किया। अचानक जैसे जल गया हो, तिलक के हाथ उसके चेहरे से अलग हो गए। वह उचटे स्वर में बोल उठा: "सत्या, क्या पर्जन्य को भी चश्मा लगा है ?"

हां तिलक, तुम्हारी ही तरह सत्या ने उत्तर दिया। "पर्जन्य

की आँखों की जांच डॉ. गोरे से करवाने के लिए ही आज सुबह हम दोनों आँखों के अस्पताल में आए थे और वहीं अचानक तुमसे मुलाकात हो गई। तिलक को लगा कि एक काला पहाड़ कमरे में आकर खड़ा हो गया था।

ईक्षा का डर सही निकला खून के प्यासे विरोधियों ने सजल को मौत के घाट उतार दिया। एक रात वह बाहर था कि तभी हंसिए से उस पर हमला किया गया। कस्बे के अस्पताल में उसका ऑपरेशन हुआ लेकिन वह बच नहीं पाया। ईक्षा के सिर पर मानो आसमान टूट पड़ा।

कुछ दिनों बाद ईक्षा अपने पुत्र कृतार्थ के साथ गोरधन सेट के यहां आई। ईक्षा को सांत्वना देने के लिये कृष्णजी भी वहां आए। तिलक मुम्बई में था वह भी सत्या और पर्जन्य के साथ अपने शहर में आ पहुंचा। सजल की हत्या का पता चलने पर सब सेठ की हवेली में जा पहुंचे। वातावरण काफी शोकपूर्ण था। सभी ने ईक्षा को आश्वासन दिया। लेकिन उसके आंसू तो थम ही नहीं रहे थे। आखिरकार कृतार्थ का आत्मविश्वास काम दे गया। उसने ईक्षा से पूछाः "मम्मी, अपन गांव वापस कब लौटेंगे?"

"अपन दो-तीन दिन में ही गांव लौट जाएंगे, बेटे" ईक्षा ने उत्तर दिया।

कृष्णजी बोलेः "भूतकाल की तुलना में भविष्य हमेशा ही अधिक आशास्पद होता है। अब तुम्हारे लिए चिंता की कोई बात नहीं है ईक्षा। कृतार्थ तुम्हारे समूचे मार्ग का दीया है। वह सबकुछ को उज्ज्वल करेगा।"

फिर कृष्णजी ने ईक्षा और सत्या से कहाः "तुम दोनों द्रोपदी और सीता की तरह हो।" उन्होंने तिलक से कहाः "विश्व का अंतिम सत्य प्रकाश है। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है। इस विश्व का केंद्र बिन्दु परमात्मा हैं। परमात्मा स्वयं प्रेम रूप हैं और प्रेम से

बढ़कर कोई प्रकाश नहीं है। तिलक तुम्हें सत्या और पर्जन्य मिले यानी तुम्हारी आँखों का ऑपरेशन सफल हुआ, ऐसा मान लो।

"कमरे के दरवाजे पर पर्जन्य और कृतार्थ दिखाई दिए उन्हें देखकर गोरधन सेठ ने कहा - "कैसे लवकुश जैसे दिखाई दे रहे हैं।" पर्जन्य ने तिलक के सामने उनका पुस्तकालय देखने की ईच्छा व्यक्त की।

तिलक, सत्या और पर्जन्य पुस्तकालय पहुंचे। पर्जन्य ने बार-बार पुस्तकालय देखा, तिलक ने कहाः "बेटे ये लाइब्रेरी नहीं मेरा तपोवन है।"

"और मेरा तो यह मधुवन है पर्जन्य, इस मधुवन में ही मैंने पारिजात लगाया था" सत्या ने मन ही मन कहा।

पर्जन्य ने पुस्तकालय में काम करने की इच्छा प्रकट की।

ईक्षा और कृतार्थ गांव जाने के लिए निकलें, उससे पहले तिलक ने कहा:"ईक्षा बहन सजल भाई के दीये को नहीं दीयों को अखण्ड रखना"

"मैं पीछेहट नहीं करूंगी भैया" ईक्षा ने कहा। फिर उसने सत्या से कहाः "भाभी, दोनों दीयो को संभालना" वह बोली "कोई जी न जलाना मेरी चिंता भी न करना। मैं धरती में समानेवाली नहीं हूं, मैं लंका को जलाऊंगी।"

पर्जन्य ने कृतार्थ से पूछाः "तुम क्या बनोगे?"

"डॉक्टर, अपने पापा की तरह" कृतार्थ का उत्तर था।

जगन्नाथजी के मंदिर में रथ यात्रा का उत्सव था। रथयात्रा की पहली रात को कृष्ण, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों की आँखों पर पट्टी बांधने का और रथयात्रा वाली सुबह पट्टियां खोलने का रिवाज परंपरा से चला आ रहा था। निगमशंकर तथा भागीरथीबा जब तक जिंदा थे तब तक तो वे इस रस्म को निभाते थे प्रश्न उठा कि इस साल इस रस्म को कौन निभाएगा। गोरधन सेठ का

सुझाव था कि सत्या मूर्तियों की आँखों पर पट्टियां बांधे और खोले-यह सुझाव गोरधन सेठ ने दिया लेकिन रूढ़िवादी पुजारी प्रेमशंकर ने इसका विरोध किया। कानूनी तौर पर सत्या तिलक की धर्मपत्नी नहीं है और बिना विवाह किए वे साथ रहते हैं, कहकर उसने अंटशंट बोलना शुरू कर दिया। सेठ के आदेश से वह सत्या, तिलक और पर्जन्य को मंदिर में बुला लाया लेकिन वहां तीव्र संघर्ष हुआ। सेठ ने कहा:मैं जानता हूं प्रेमशंकर, कि सत्या कानूनी तौर पर तिलक की पत्नी नहीं है लेकिन इस दुनिया की लाखों तथाकथित धर्मपत्नियों की तुलना में सत्या अधिक पतिपरायण है।

प्रेमशंकर तथा अन्य चार-पांच लोगों ने अधिक अपमानजनक बर्ताव किया। तिलक बोल उठा: "चाचा, यह बहस क्यों? सत्या का यह अपमान असह्य है।"

अपनी लाल आँखें लिए सत्या तिलक के पास आई और उसका हाथ पकड़कर बोली: "तिलक चलो, अपन यहां से चले जाते हैं। यह मंदिर? ये भक्त? ये पुजारी?" लेकिन पर्जन्य ने शांत और सशक्त स्वर में कहा: "नहीं मम्मी, नहीं पापा, हमें इस तरह मैदान छोड़कर नहीं जाना है, जो आ पड़ेगा उससे मुकाबला करेंगे। पीठ नहीं दिखाएंगे वरना मम्मी तुम्हारे ऊपर गलत कलंक... "

उत्सव में कृष्णजी आने वाले थे वे जब मंदिर में आए तो वातावरण में काफी उग्रता थी। सेठ ने उनके समक्ष सारी परिस्थिति खोलकर रख दी। कृष्णजी ने सत्या से कहा: "बेटी आगे बढ़। मूर्तियों के आँख पर पट्टी बांध दे। कल सुबह रथयात्रा से पहले पट्टियां खोलनी भी तुझे ही है।"

कुछ भक्तों ने फिर से आपत्ति की कि यह स्त्री विवाहित नहीं है।

"राधेकृष्ण ... ! राधेकृष्ण ... !" प्रेमशंकर ने तिरस्कार

से कहा। कृष्णजी ने भक्त समुदाय की ओर घूमकर कहा कि:-"राधा और कृष्ण ... पुजारी जी ने कैसे मधुर नामों का स्मरण किया, भाइयों और बहनों, एक बात सुन लीजिए ... राधा कृष्ण की धर्मपत्नी नहीं थी, प्रिय सखी थी। सोलह सौ साठ रानियां द्वारिका के महल में रहती थीं, लेकिन राधिका कृष्ण के हृदय में बसी थीं राधा-कृष्ण-मनुष्य जाति की प्रेम भावना का सर्वोतम प्रतीक है ...प्रेम की सगाई सबसे ऊपर है"...

संघर्ष शांत हो गया। सत्या ने मूर्तियों की आँखों पर पट्टी बांधी। दूसरे दिन सुबह रथयात्रा शुरू होने से पहले उसने पट्टियां खोलीं। रथयात्रा के प्रारंभ की घड़ी आ पहुंची। गोरधन सेठ ने भक्तों से कहा: "रथ की पहली रस्सी तिलक खींचेगा।"

तिलक ने बलपूर्वक रस्सी खींची। दिशाएं जय-जयकार से गूंज उठीं। रथ के बड़े पहियों से चरचराहट की ध्वनि उठी। रथ आगे बढ़ा और बढ़ता ही रहा।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित